डाउनलोड मुद्रण

अ+ अ-

कहानी

अधूरी तस्वीर

सूरज प्रकाश

आपने मुझे भारी विपदा में डाल दिया है, इंस्पेक्टर साहब! लिख सकूँगी क्या वह सब? सब कुछ हालाँकि आँखों के आगे हर वक्त घूमता रहता है, लेकिन उसे शब्दों में बयान करना, उस सब कुछ को फिर से झेलने-भोगने जैसा लग रहा है। बहुत मुश्किल काम है सर, लेकिन आपने देश का, ड्यूटी का, धर्म और इनसानियत का वास्ता देकर मुझे बाँध दिया है। आपका सोचना भी सही है, अगर मैं कुछ नहीं बताऊँगी तो इतिहास का यह पन्ना, जो एक ही साथ उजला और घिनौना है, कभी सूरज की रोशनी नहीं देख पाएगा। बदकिस्मती से मैं अकेली ही तो उस हादसे की मूक गवाह बची हूँ। अब मुझ पर ही तो तो यह जिम्मेवारी आती है कि उस घटना का पूरा लेखा-जोखा सबके सामने रखूँ, ताकि दुनिया जान सके कि न तो अभी इस दुनिया से इनसानियत खत्म हुई है और न ही हैवानियत। और फिर उन कातिलों को पकड़वाने में मैं अकेली ही तो मदद कर सकती हूँ। इतने बड़े मकसद के लिए खुद को एक बार फिर तपाना ही पड़ेगा उस आँच में। उस लहू की नदी को एक बार फिर तैर कर पार करना ही पड़ेगा।

ठीक है, इंस्पेक्टर साहब। मैं वह सब कुछ लिखूँगी, लिपिबद्ध करूँगी, जो मैंने देखा है। पूरी शिद्दत से अपनी रग-रग पर, साँस-साँस के साथ महसूस किया है, झेला है। अब मुझे लगने लगा है, मैं तभी सहज हो पाऊँगी जब इस हादसे के अनुभव को किसी के साथ बाँट लूँगी। आप शायद यकीन न करें साहब, इन तीन दिनों में मैं एक पल के लिए भी सहजता से साँस नहीं ले पाई हूँ। खाना-पीना तो दूर, पलकें तक नहीं झपकी हैं मेरी। बस आतंकित-सी, हर वक्त सहमी-सी बैठी रहती हूँ। दुनिया भर के पत्रकार मुझसे सैकड़ों सवालों के जवाब माँगने के लिए गिड़गिड़ा रहे हैं। लेकिन मेरी जड़ता नहीं टूटी है। सब कुछ अपनी आँखों से देखने, खुद पर झेलने के बाद भी लगता है - काश यह सब कुछ एक दर्दनाक ख्वाब होता! कम-से-कम नींद उचटने पर तो टूट जाता। लेकिन यह सब तो....

बताती हूँ सब। सिलसिलेवार। कड़ी-से कड़ी जोड़ते हुए, ताकि आपको सही सुराग मिल सकें। आप उन कथित हत्यारों को जल्द-से-जल्द पकड़ सकें। कोशिश करूँगी, खुद पर काबू पाने की। इन शब्दों के जरिए जो कुछ मेरे बाहर आएगा, वही तो मेरी सच्ची श्रद्धांजलि होगी उन अनाम सहयात्रियों के प्रति, जो एक न लड़ी गई इकतरफा लड़ाई में, बिना लड़े, बिना हाथ उठाए शहीद हो गए। जो इतिहास बन गए हैं, उनका इतिहास लिखूँगी मैं। तभी मुझे चैन मिलेगा। उन सबकी आत्माओं को शांति मिलेगी।

मैंने आपके सवालों को अच्छी तरह समझ लिया है। हो सकता है लिखते समय कुछ बातें आगे-पीछे हो जाएँ या कम-ज्यादा लफ्जों में लिखी जाएँ। मैं जिस हालत में यह सब कुछ लिख रही हूँ, उसमें ऐसा होना स्वाभाविक ही है। उसे अन्यथा न लिया जाए।

नाम अदिति। उम्र चौंतीस। जन्म जिला संगरूर। पढ़ाई पहले संगरूर, फिर चंडीगढ़। वहीं से आर्ट्स में मास्टर डिग्री। पिता सिख थे, सुदर्शन सिंह। वकील थे। माँ ब्राह्मण परिवार की थी, नाम राज। मैं उनकी इकलौती संतान। पिता तीन साल पहले गुजर गए। माँ पिछले साल। मेरी मातृभाषा? ओह नहीं! माफ कीजिए सर, मेरी तो कोई मातृभाषा ही नहीं है। कैसी पागल हूँ मैं। गूँगी हूँ मैं, तभी यह बयान लिखकर दे रही हूँ। रब्ब ने मुझे बोलने के लिए कोई जुबान नहीं दी है, लेकिन खुद को अभिव्यक्त करने, अपनी बात कहने के लिए मुझे कभी कोई तकलीफ नहीं हुई। मुझे ईश्वर ने कलाकार की उँगलियाँ दी हैं। मैं रंगों के जरिए, रेखाओं के जरिए शायद बेहतर तरीके से अपनी बात कह पाती हूँ। मुझे उन पर पूरा भरोसा जो होता है। मेरे हाथों से बनने वाले चित्र झूठ नहीं बोलते न! सारे झूठों की, सारी बुराइयों की जड़ यह जुबान ही तो होती है। हमें अपनों से दूर करती है। आज सारे झगड़े ही जुबान को लेकर हैं। कई बार सोचती हूँ कितनी खुशनसीब हूँ मैं, इन सारी परेशानियों से परे, रेखाओं के जरिए सच को सच की तरह कह पाती हूँ।

बचपन से दीवारें, आँगन और कापियाँ रँग-रँग कर अपनी दुनिया रचती रही। बड़ी होती रही। वैसे भी पूरा बचपन अकेले बिताया है मैंने। बिल्कुल तनहा। कभी किसी से खुद को बाँटने, कहने-सुनने की जरूरत ही महसूस नहीं हुई। एक बात बताऊँ आपको। मुझे क्या चाहिए, क्या नहीं, मैं क्या कहना या करना चाहती हूँ ये बातें कभी भी मुझे अपनी माँ से नहीं कहनी पड़ीं। हम दोनों के बीच हर वक्त टैलिपैथी की अदृश्य तरंगें तैरती रहती थीं। दूसरे कमरे में होने के बावजूद माँ को मेरी हर गतिविधि, जरूरत या इच्छा का पूरा-पूरा अहसास रहता था। मैं तो खैर क्या ही बोलती, माँ भी मुझसे स्पर्श के जरिए, आँखों और चेहरे के भावों के जरिए ही बात करती थी। जरा बड़ी होने पर मुझे यही लगता रहा, अगर मेरी जुबान होती भी तो भी मैं उसका इस्तेमाल ही न करती। शायद मैं बहक रही हूँ, खैर।

चंडीगढ़ में मेरा अपना स्टूडियो और आर्ट स्कूल है। लड़कियों को रंगों की भाषा सिखाती हूँ। मेरी सारी दिनचर्या, उठना, बैठना, पहनना, ओढ़ना सब कुछ कला को समर्पित है। अपरिचित नाम नहीं हूँ इस फील्ड में। कई एकल, सामूहिक प्रदर्शनियों में चित्र प्रदर्शित किए हैं।

दिल्ली में एक एकल प्रदर्शनी की बात चल रही थी। उसी सिलसिले में कुछेक पेंटिंग्स लेकर दिल्ली जा रही थी, जब यह हादसा हुआ। एक ऐसा हादसा, जिसने मेरे भीतर के कलाकार को बुरी तरह स्तब्ध कर दिया है। मेरी चीखें भीतर ही घुटी रह गई हैं। आँसू आँखों में ही सूख गए हैं। माँ बताती थी, बचपन में मैं बहुत हँसती थी या बहुत रोती थी। लगता है, खुद को हलका करने के दोनों जरिए मुझसे छीन लिए गए हैं। इस भीषण दुर्घटना के बाद अब न हँसी रही है मेरे पास, न आँसू।

उस दिन सोमवार था। 7 मार्च की खुशनुमा सुबह। यात्रा करने लायक मौसम। बस में काफी सवारियाँ थीं। बस स्टार्ट करते ही ड्राइवर ने गुरुवाणी का कैसेट लगा दिया था। अच्छा लगा था। शुरू से ही माँ-बाप ने जो संस्कार दिए हैं, माहौल ने जो कुछ दिया है, उसमें शबद-कीर्तन, गुरवाणी हमेशा कानों में अमृत घोलते हैं। सिर खुद-ब-खुद उस परम पिता के आदर में झुक गया था और आँखें बंद हो गई थीं। सारा दिन सकारथ जाएगा, ऐसा सोचा था। दिन की शुरुआत भला इससे अच्छी और कैसे हो सकती है। सवारियाँ साथ-साथ गुनगुनाने लगी थीं। थोड़ी देर पहले बस चलने तक सब अलग-अलग सवारियाँ थीं, जिनकी मंजिलें मुकाम अलग-अलग होते हैं। शबद-कीर्तन की पवित्र स्वर लहरियों ने सबको जोड़ दिया था। जैसे सब गुरुद्वारे में गुरु ग्रंथ साहिब के सामने बैठे हों।

मुझे सबसे आखिर वाली लाइन में सीट मिली थी। बाईं खिड़की से दूसरी। खिड़की की तरफ मेरे साथ एक बुजुर्ग बैठे थे। होंठों-ही-होंठों में गुरबाणी का पाठ कर रहे थे, कैसेट के साथ-साथ। मेरी दाईं तरफ एक नौजवान सिख बैठा था। दाढ़ी थोड़ी कतरी हुई। कपड़े, पगड़ी सलीकेदार। कहीं एग्जीक्यूटिव या आर्मी अफसर रहा होगा। डीलक्स बस थी वह। सीटों की टेक ऊँची होने की वजह से बिना उचके आगे बैठे लोगों को देखना संभव नहीं था। बस में चढ़ते समय ही देखा था मैंने, कुछेक बच्चे और जनानी सवारियाँ थीं बस में। हमारी लाइन में बाकी तीन सीटों पर एक परिवार था। माँ बाप और नई ब्याही उनकी लड़की। उसका सुहाग का चूड़ा, मेहँदी रचे हाथ और चेहरे की रौनक बता रहे थे अभी उसकी सुहागरात की खुमारी भी नहीं उतरी होगी। बस में चढ़ते समय ही उससे आँखें मिली थी। हमने आँखों-ही-आँखों में एक ही इशारे में बहुत कुछ कह सुन लिया था। बाँट लिया था। मेरी मुस्कुराहट देख उसका चेहरा इंद्रधनुष में बदल गया था। वे शायद उसे पहली बार घर लिवा कर ला रहे थे। बेचारे।

मेरे पास बैठे बाँके जवान ने मुझसे पूछा था, 'कहाँ तक जाएँगी आप?' मैंने इशारे से बता दिया था, 'बस की मंजिल तक।' वह और कुछ भी पूछना चाहता था, लेकिन मैंने उसे कोई मौका नहीं दिया था और एक पत्रिका खोल ली थी। दरअसल वह बहुत ही भला और प्यारा-सा इनसान था। मैं कतई नहीं चाहती थी कि उसे मेरे बेजुबान होने का पता चले। बहुत दुखदायी होते हैं वे पल मेरे लिए जब मुझे गूँगी समझ लिया जाता है। मैं बेजुबान जरूर हूँ गूँगी नहीं हूँ। अपनी बात को तो कह ही सकती हूँ। मैं खुद भी उसे दुखी नहीं करना चाहती थी। सुबह-सुबह उसे एक गूँगी लड़की के लिए बेचारगी महसूस कराने और खुद बेचारी बनने का कतई मूड नहीं था। मैं साफ महसूस कर रही थी, वह बीच में अकेला महसूस कर रहा था। एक तरफ मैं थी जान-बूझ कर पत्रिका में आँखें गड़ाए और दूसरी तरफ दुल्हन की माँ। मुझे अपनी शरारत पर कोफ्त भी हो रही थी, पर उपाय भी न था।

बस डेढ़ घंटे बाद करनाल अड्डे पर रुकी थी। ड्राइवर ने दस मिनट का समय दिया था चाय पानी के लिए, तब किसे पता था, उसकी खुद की और सारी सवारियों की यह आखिरी चाय होने जा रही थी। मैं बस से नीचे नहीं उतरी थी। चाय कम पीती हूँ। यूँ भी सफर में कुछ खाती पीती नहीं। बस जब चलने को थी, तभी पाँच-सात नई सवारियाँ आई थीं बस में। वे तीनों भी वहीं से चढ़े थे। दो के कंधों पर सफारी बैग थे और एक ने अपने हाथ में वैसा ही बैग ले रखा था जैसा आम तौर पर मैडिकल रैप्स के पास होता है। उन्होंने अपने लिए सीटें तलाश ली थीं। एक ड्राइवर के पीछे वाली सीट पर जम गया था और दो दरवाजे के ठीक सामने वाली सीटों पर। उस वक्त हवा में कहीं भी खौफ नहीं था, न ही किसी आतंक की बू ने तब तक बस को अपनी गिरफ्त में लिया था। दरअसल तब तक उन तीनों ने आदमियत का जामा नहीं उतारा था। ड्राइवर, कंडक्टर, सवारियाँ, मैं खुद पहले की ही तरह अपने-अपने में मशगूल थे। बस के भीतर एक दुनिया थी, अपनी गति से चल रही थी। फिल्मी गानों के कैसेट ने फिर से वातावरण संगीतमय कर दिया था।

और तभी वह सब कुछ हुआ था। कई चीजें एक साथ घट गई थीं। वे तीनों एक साथ खड़े हो गए थे। बस की दाईं तरफ एक जीप ओवरटेक करके आ गई थी, जिसमें बैठे स्टेनगनधारी ने बस ड्राइवर को बस धीमी करने पर मजबूर कर दिया था। उनके बैगों से भी स्टेनगनें निकल आई थीं। एक जाकर ड्राइवर के सिर पर खड़ा हो गया था और दो ने पूरी सवारियों को अपनी जद में ले लिया था। बस किसी कच्चे रास्ते पर मोड़ दी गई थी। सबकी घिग्घी बँध गई थी। दबी-घुटी चीखों, हिचकियों और करुण चीत्कारों से फिल्मी कैसेट की आवाज दब गई थी। शायद वे भी इस कैसेट से परेशान हो रहे थे। पहली गोली से स्टीरियो सिस्टम को ही ठंडा किया गया था। बस रुकी थी। और भीषण नरसंहार ने एक आम दिन को इतिहास का एक क्रूरतम दिन बना दिया था। खून की एक और एकतरफा

होली खेली गई थी उस सुनसान, उजाड़ पगडंडी पर। थोड़ी देर पहले हँसती-खेलती, अपनी-अपनी उम्मीदों में जीती, मंजिल की तरफ जाती सवारियों को बेरहमी से लाशों के ढेर में बदल दिया गया था।

अगले दिन अस्पताल में होश आने पर मुझसे ढेरों सवाल पूछे गए। मैं बेहद आतंकित थी। बदहवास हालत में कुछ भी बताने लायक स्थिति में नहीं थी। जरा हालत सँभलने पर अखबारों में हादसे की अलग-अलग खबरें पढ़ीं। सचमुच कोई भी आदमी इस गुत्थी को सुलझा नहीं पा रहा है। बस यात्रियों की अब तक की हत्याओं से बिलकुल अलग मामला है। सभी अखबारों ने अपने-अपने कयास भिड़ाए हैं। पुलिस हैरान-परेशान है। आखिर यह हुआ कैसे? कुल तीस मौतें, सिख ड्राइवर, मोना कंडक्टर, सारी सवारियाँ, औरतें-बच्चे! कुल सवारियों में सत्रह सिख! सभी को गोलियों से छलनी कर दिया गया। अगर यह सिख आतंकवादियों की करतूत है तो सिखों को भी क्यों नहीं बख्शा गया और अगर हिंदुओं ने यह शरारत की है तो तेरह हिंदू क्यों मारे गए? पत्रकार, पुलिस और सरकार इस गुत्थी से ज्यादा इस बात से हैरान हैं कि मैं, सिर्फ मैं ही अकेली कैसे बच गई? मेरे शरीर पर एक खरोंच तक नहीं पाई गई है। सबसे अलग गैंगवे में मैं बेहोश पाई गई थी। बाकी सवारियों को उनकी सीटों पर ही चिरनिद्रा में सुला दिया गया। मेरे होश में आने के बाद से लगातार इस बात की कोशिशें जारी हैं कि मैं इन सारे रहस्यों पर से परदा उठाऊँ। बयान करूँ कि सब कुछ कैसे हुआ। आतंकवादी अपने पीछे कोई सुराग नहीं छोड़ गए हैं। सारी उम्मीदें मुझ पर हैं।

सबकी उलझनें बिलकुल सही हैं, इंस्पेक्टर साहब। सारे रहस्यों पर से परदा मैं ही हटा सकती हूँ। यह पता चलने पर कि मैं बेजुबान हूँ और कलाकार हूँ, मुझसे अनुरोध किया गया कि मैं अपना बयान लिखकर दूँ और अपनी याददाश्त के सहारे उन निर्मम हत्यारों के चित्र बनाने की कोशिश करूँ।

बचपन में एक बहुत अच्छी कहानी पढ़ी थी। एक बड़े नामी कलाकार की प्रबल इच्छा थी कि वह एक ऐसा चित्र बनाए जिसमें दो चेहरे हों। पहला चेहरा दुनिया के सबसे भले, मासूम और अच्छाइयों से भरे आदमी का हो और दूसरा चेहरा दुनिया के सबसे खूँखार, बुरे और खराब आदमी का।

वह अपने चित्र के लिए मॉडलों की तलाश में निकल पड़ा। एक जगह उसे एक बहुत ही मासूम, पवित्र-सा और सारी अच्छाइयों के पुंज-सा एक बच्चा मिला। उसे लगा, चित्र के पहले चेहरे के लिए उसे मॉडल मिल गया है। वह उसे अपने साथ स्टूडियो में ले आया, उसे खिलाया, पिलाया और उसकी सारी मासूमियत को अपने रंगों के जरिए कैनवस पर उतार लिया। उसका आधा काम हो गया था। अब उसे एक ऐसे आदमी की तलाश थी, जिसे देखते ही लगे, संसार की सारी खराबियों की खान है यह आदमी।

वह भटकता रहा ऐसे खूँखार आदमी की तलाश में। बीसियों बरस बीत गए। वह बूढ़ा हो चला, पर उसे मनमाफिक मॉडल न मिला जिसे वह सामने बिठा कर अपना बरसों से अधूरा पड़ा चित्र पूरा कर सके। वह निराश हो चुका था। तभी उसने एक दिल जेल से एक आदमी को निकलते देखा। कद्दावर, दरिंदगी जिस चेहरे से टपक रही थी। एकदम डरावना। कलाकार को लगा, आज उसकी तलाश पूरी हुई। यही है मेरे अधूरे चित्र का मॉडल। सारी उम्र गुजार दी इसकी खोज में। वह कैद से छूटे उस आदमी को शराब वगैरह का लालच देकर अपने स्टूडियो में ले आया। बड़ी मेहनत की। चित्र पूरा हुआ। कलाकार की खुशी का ठिकाना न था। जीवन का सर्वश्रेष्ठ चित्र जो पूरा हो गया था। तभी उस कैदी ने जोर का ठहाका लगाया। कलाकार ने जब इसका कारण पूछा तो वह बोला, 'यह बच्चे की जो तसवीर है न, जो बरसों पहले आपने बनाई थी, वह भी मेरी ही है।'

आज मेरे सामने भी वही समस्या आ खड़ी हुई है, साहब। मुझसे उस खूँखार आतंकवादी और उसके साथियों की तस्वीर बनाने के लिए कहा गया है जिसने भरी बस को, पूरी तीस सवारियों को अपनी गोलियों का निशाना बना डाला है। मेरी बनाई तसवीर के सहारे आप उसे और उसके साथियों को पकड़ सकेंगे। मैं एक कलाकार हूँ। चित्र बनाना ही मेरा काम है। सैकड़ों चित्र बनाए हैं मैंने। यह काम भी मेरे लिए कतई मुश्किल नहीं होना चाहिए। लेकिन यह बात नहीं है। उस कलाकार को तो तसवीर पूरी होने के बाद ही पता चला था कि उसने दुनिया के सबसे अच्छे और सबसे खराब आदमी का चेहरा बनाने के लिए एक ही मॉडल को दो बार अपने सामने बिठाया था। अब मैं आपको कैसे बताऊँ कि जिस खूँखार आतंकवादी, सैकड़ों कत्लों के जिम्मेदार जसविंदर - हाँ, यही नाम है उसका - की तसवीर बनाने के लिए मुझसे कहा जा रहा है, उसकी एक अधूरी तसवीर अब भी मेरे कलेक्शन में, मेरे घर की मीयानी पर पड़ी होगी। उसके बचपन की तसवीर, जो मैंने बनानी तो शुरू की थी, पर कभी पूरी नहीं कर पाई थी। जस्सी मेरे पास कई दिन तक चक्कर काटता रहा था, 'दीदी मेरी तसवीर कब पूरी करोगी?' मुझे क्या पता था कि उसकी अधूरी तसवीर पूरी करने के लिए मुझे यह दिन देखना पड़ेगा! इस मकसद के लिए उसकी तसवीर पूरी करनी पड़ेगी, कभी सपने में भी नहीं सोचा था।

हाँ, इंस्पेक्टर साहब। मैं जस्सी को जानती थी। बहुत अच्छी तरह। इतनी अच्छी तरह, जितनी कोई बहन अपने मुँहबोले भाई को जानती है। वह मेरे ही मोहल्ले का एक होनहार, अव्वल आनेवाला लड़का था। अक्सर अपनी बड़ी बहन की उँगली पकड़े हमारे घर आता था। उसकी बहन मेरी सहेली थी। जस्सी बड़ा प्यारा बच्चा था। बीबा बच्चा, जिसे देखते ही प्यार करने का जी चाहे। तभी तो एक दिन उसे अपने सामने बिठा कर मैंने उसकी तसवीर बनानी शुरू की थी। दुनिया के सबसे प्यारे बच्चे की तसवीर।

जब मैंने जस्सी की तसवीर बनानी शुरू की थी, वह आतंकवादी नहीं था। भोला-भाला बच्चा था। आज के आतंकवादी जसविंदर की तसवीर तो मैं बना दूँगी, लेकिन जस्सी से जसविंदर उर्फ कर्नल उर्फ जे के उर्फ पता नहीं क्या-क्या बनने के दौरान की तसवीरें कौन बनाएगा, इंस्पेक्टर साहब? उस दिन उसके चेहरे पर खरोंचें थीं, चोटों के निशान थे। वे सिर्फ खरोंचें ही तो नहीं रही होंगी। वे तो आइसबर्ग रहे होंगे। भीतर तक चीरने वाले जख्मों, घावों के बाहरी निशान। उन खरोंचों को तो मैं उकेर दूँगी चेहरे पर, परंतु भीतर के घावों, नासूरों की तसवीर? अगर कलाकार के पास यह शक्ति होती तो वह बाहरी हालात की, प्रभावों और प्रक्रियाओं की, जरूरतों और मजबूरियों की तसवीर खींच सकता तो जस्सी को अपनी अधूरी तसवीर पूरी कराने के लिए आज का जसविंदर न बनना पड़ता। उस तसवीरों के आईने में वह खुद को बहुत पहले देख चुका होता। यह विडंबना ही तो है कि जसविंदर के चेहरे भर की तसवीर बनाने मात्र से आपका काम चल जाएगा, इंस्पेक्टर साहब। आप कह सकते हैं कि उस तसवीर की मदद से आप एक खूँखार कातिल को पकड़ सकते हैं, जो धर्म के नाम पर, कौम और जाति के नाम पर बेकसूर लोगों को मार रहा है। पर एक बात जानना चहूँगी, सर। आज के जसविंदर की तसवीर तो मैं बना दूँगी, पर उन सैकड़ों जसविंदरों की तसवीरें कौन बनाएगा जो आज पंजाब के हर गाँव, हर कस्बे में तैयार हो रहे हैं। उनकी तो बचपन की अधूरी तसवीर भी शायद किसी अभागी बहन के पास न हो, जिससे उनकी इस अँधेरी, गुमराह, आत्मघाती यात्राका अंदाजा लग सके। उन्हें आप कैसे पकड़ेंगे? क्या आपको नहीं लगता कहीं कुछ गलत है। नहीं, गिनती की गलती नहीं। वह तो है ही। नहीं तो पुलिस द्वारा सैकड़ों आतंकवादी मार देने और पकड़ लेने के बाद भी उनकी संख्या घटने के बजाय हर दिन बढ़ती क्यों रहती? हर दिन एक नई जगह पर बेकसूरों की हो रही हत्याओं से तो यही लगता है, गड़बड़ कहीं और है।

मुझे नहीं पता, आपकी पुलिस इस बारे में क्या सोचती है, परंतु मेरा कलाकार मन तो यही जानता है कि कोई आतंकवादी पैदा नहीं होता। पैदा तो कोई महान भी नहीं होता। सब वक्त का फेर होता है। आसपास का माहौल कब किसे नीचे गिरा दे, ऊपर उठा दे, रब्ब ही जानता है। मैं मानती हूँ पूरी कौम, पूरी जाति या पूरा राष्ट्र एक ही नजरिए से नहीं सोचता। सोचना तो दो भाइयों या पति-पत्नी का भी एक जैसा नहीं होता, लेकिन कुछेक सिरफिरों की वजह से पूरी कौम को सजा देना या पूरी कौम को ही गलत करार देना हमारी बीमार मानसिकता का ही परिचायक है। समस्या सिर्फ पंजाब को लेकर नहीं है। बुनियादी सोच को लेकर है। हम कब तक आतंकवादी बनाते रहेंगे और कब तक आतंकवादी गुमराह होकर देश को जलाते रहेंगे। इस समस्या के कारणों और निदान की पहचान करना आप लोगों का, समाज सुधारकों का काम है। राजनीतिज्ञों का काम है। लेकिन दिक्कत तो यही है कि जिनको यह समस्या सुलझानी चाहिए थी, वही धर्मगुरु और राजनेता इन धागों को और उलझा रहे हैं।

शायद मैं फिर बहक रही हूँ। लेकिन आज कहे बिना नहीं रह पाऊँगी, मैं एक कलाकार हूँ। पहले ही कह चुकी हूँ, मेरे रंग झूठ नहीं बोलते। मेरी रेखाएँ सच बोलती हैं। स्वाभाविक ही है जसविंदर की तसवीर बनाते समय मेरे हाथ बार-बार काँपेंगे। रेखाएँ गड़बड़ाएँगी। रंग साथ नहीं देंगे। मैं इस बात से पूरी तरह से सहमत हूँ कि उसने जो जघन्य अपराध किया है, उसकी कड़ी-से-कड़ी सजा उसे मिलनी ही चाहिए। पर मैं यह भी जानती हूँ कि मैंने जिस जस्सी की तसवीर बनानी शुरू की थी, उसे उसी रूप में ईश्वर ने बनाया था। आज जिस जसविंदर की तसवीर मैं बनाऊँगी, वह आज के समाज की देन है। वह उसकी नहीं।

शीर्ष पर जाएँ